The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 4 | Issue 4 | April 2026
ISSN: 2583-973X (Online), SJIF IF: 5.6
Website: www.theacademic.in

पंचपरगनिया कविताओं में अभिव्यक्त आदिवासियों का जीवन यथार्थ

सारण प्रमाणिक

शोधार्थी, पंचपरगनिया विभाग, डीएसपीएमयू, रांची

ई-मेल: saranpramanik94@gmail.com

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.20126998

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Accepted: 25-04-2026

Published: 10-05-2026

Keywords:

अस्मिता, ईमानदारी, पंचपरगनिया, आदिवासी, समूह आदि।

ABSTRACT

समकालीन दौर के हिंदी साहित्य में अनेक विमर्श उभर कर सामने आए,उसमें आदिवासी विमर्श एक है। इस विमर्श में पंचपरगनिया साहित्य भी अछूता नहीं है। इन विमर्शों में आदिवासियों के जीवन शैली को अभिव्यक्त करने में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। आदिवासी विमर्श का मुख्य उद्देश्य अस्मिता एवं अस्तित्व से जुड़ा हुआ है।सदियों से आदिवासी समाज को एक पिछड़ा समाज माना गया।उनके साथ दयम दर्ज की व्यवहार किया गया। किंतु भूमंडलीकरण के दौर में आज शिक्षा का प्रचार प्रसार होने से आदिवासी समाज में भी जागृति आई है। प्रस्तुत शोध पत्र में विभिन्न आदिवासी एवं गैर आदिवासी साहित्यकारों का संदर्भ ग्रहण करते हुए आदिवासियों के जीवन के ज्वलंत समस्याओं को उजागर करने का प्रयास किया गया है।सरल समाज के ताने-बाने में रचे बसे इन आदिवासियों की जीवन की धुरी जंगल, पहाड़, नदी,झरने, विभिन्न जंगली वनस्पतियां आदि हैं. जिनका अस्तित्व नगरीकरण के कारण संकट में पड़ता चला जा रहा है। अपनी अस्मिता एवं अस्तित्व का संरक्षण करने के लिए उन्हें कोई मार्ग नहीं सूज रहा है और यह एक दोयम दर्ज का जीवन जीने के लिए विवश है। समकालीन कविताओं में आदिवासियों के जीवन की स्थितियों ,संघर्षों,आकांक्षाओं और सपनों को कविता में अभिव्यक्त कर रहे हैं। आरंभिक दौर में ज्यादातर आदिवासी साहित्य वाचिक परंपरा का हिस्सा रहा है और इसलिए यह गीत या कविता के माध्यम से हमारे सामने आता है। यही कारण है कि

आदिवासी साहित्य के विधाओं में कविता सर्वाधिक महत्वपूर्ण विद्या रही है। इनमें उनके भोगे हुए साहित्य के साथ-साथ आदिवासी समाज के सामाजिक वैयक्तिक जीवन संघर्ष को अभिव्यक्ति मिली है। इसमें विभिन्न सामाजिक विद्रोह, नारी के जीवन संघर्ष, विस्थापन, अशिक्षा, अभाव एवं गरीबी और अस्तित्व के प्रश्न को प्रमुखता मिली है।

मूल आलेख: भारत के सरजमी पर सदियों से रहने वाला मूल निवासी समाज ही आदिवासी समाज है। वर्तमान समय में हम सभी लोग जानते हैं कि मूलनिवासी समाज को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है।जैसे - मूलनिवासी,आदिवासी, बनवासी अनुसूचित जनजाति,गिरिजन,भूमिजन आदि। लेकिन दुर्भाग्य यह है कि इस समुदाय के लोगों को मनुष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया गया।दरअसल इन्हें असभ्य या तो जंगली कहकर खदेड़ा गया। इस संदर्भ में आदिवासी चिंतक डॉ गंगा सहाय मीणा के विचारों पर भी दृष्टि डालना दिलचस्प है। वे लिखते हैं "आदिवासियों के बारे में मानवशास्त्र से लेकर दूसरे तमाम अनुशासनों में हुए अध्ययनों में से अधिकांश अतिवादी निष्कर्ष से नहीं बच पाए हैं- अध्ययनकर्ताओं ने या तो आदिवासियों की असभ्य और बर्बर छवि निर्मित करने की कोशिश की है या फिर उनका इतना अधिक महिमामंडन किया है कि वे इंसान नहीं, मिथकीय देवता लगते हैं।"[1] भारत के कोई ऐसे क्षेत्र हैं, जहां यह समाज जल-जंगल-जमीन को बचाने के लिए लगातार संघर्ष कर रहा है।इनके संघर्ष को आगे बढ़ाने में आदिवासी और गैर आदिवासी साहित्यकारों ने अपनी कविताओं के माध्यम से इस समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों को चित्रित करने में अहम भूमिका निभाई है। इन कविताओं में समसामयिक चुनौतियों के साथ-साथ जीवन यथार्थ ,चेतना व जागरूकता आदि के तत्व विद्यमान है। समाज में आदिवासी लोग विमर्श के माध्यम से अपने अस्मिता एवं अस्तित्व को सामने लेकर आने के उद्देश्य से लड़ाई लड़ रहे हैं।'आदिवासी साहित्य एवं संस्कृति' पुस्तक में लिखा है कि "आदिवासी साहित्य जीवन का साहित्य है। वह प्रकृति का सहयोग,सह अस्तित्व का अभ्यस्त ऊंच-नीच,भेदभाव व जल कपट से दूर है।वह जमाखोरी या संपत्ति जुटाने की भावना से मुक्त है।वह अन्याय का विरोधी और सामाजिक न्याय का पक्षधर है। उसके साहित्य में इन्हीं सबकी अभिव्यक्ति है। जीवन की समस्याएं और प्रकृति से लगान उसके साहित्य का आधार है।"[2]

झारखंड के रांची जिला के पूर्व क्षेत्र पांचपरगना (सिल्ली,बुंडू, तमाड़,राहे,सोनाहातु आदि)में पंचपरगनिया भाषा बहुतायत में बोली जाती है।इस क्षेत्र में आदिवासियों की संख्या भी बहुत है।इस आदिवासियों की संपर्क भाषा भी पंचपरगनिया ही है। पंचपरगनिया साहित्य में आदिवासी एवं गैर आदिवासी दोनों ही साहित्यकार हैं पंचपरगनिया साहित्य में आदिवासियों की जीवन का यथार्थ चित्रण अत्यंत गहरा और मार्मिक है ,इन कविताओं में न केवल उनकी संस्कृति की झलक मिलती है,बल्कि उनके शोषण, संघर्ष और प्रकृति के साथ उनके अटूट जुड़ाव का भी सजीव वर्णन मिलता है।पंचपरगनिया के कविवर परमानंद महतो,राज किशोर सिंह,राजकिशोर साहू, डॉ

करमचंद्र अहीर,बंशीधर महतो,डॉ पराग किशोर सिंह, डॉ नरेन्द्र कुमार दास, डॉ एंथनी मुंडा आदि के कविताओं में आदिवासी जीवन की यथार्थ देखने को मिलता है।

पंचपरगनिया कविताओं में आदिवासी जीवन का सबसे सुंदर पक्ष प्रकृति से उनका जुड़ाव है। नदी-नाला, पहाड़ -पर्वत, वन-झाड़ केवल संसाधन नहीं बल्कि उनके परिवार के सदस्य की तरह हैं। पंचपरगनिया कवि परमानंद महतो की कविता '**संसकिरति**' की पंक्तियां बहुत ही सुंदर और गहरी है।ये प्रकृति के माध्यम से स्थिरता और निरंतरता के बीच के संतुलन को दर्शाती है। इस कविता से आशय संभवत: जीवन के दो महत्वपूर्ण पहलुओं से है-पहाड़ जैसी स्थिरता और नदी जैसी गतिशीलता। पहाड़ हमें सिखाता है कि चाहे कितनी भी आंधी तूफान आए,अपने जड़ों और अपने सिद्धांतों पर अटल रहना चाहिए ।यह आदि(शुरुआत) से वहीं है जो अटूट विश्वास और मजबूती का प्रतीक है।नदी हमें सिखाती है कि जीवन का नाम ही चलते रहना है ।वह अपने रास्ते खुद बनाती है और बिना रुके मधुर संगीत(कल कल) करते हुए आगे बढ़ती रहती है।यह निरंतर प्रयास और अनुकूलनशीलता का प्रतीक है। हृदय की भाव उजागर करते हुए परमानंद महतो लिखते हैं -

"पाहाड़ हुआंइ रहे
आदि लेक
जाहां आहिस
अटल।
नदी बहते जा
जे डहरे
बहते आले
कल-कल।"[3]

आगे परमानंद महतो झारखंड के वर्तमान स्थिति और यहां के विस्थापन के पीड़ा को बहुत सुंदर और मार्मिक ढंग से बताते हुए कहते हैं कि हमारे प्रकृति,संसाधन,अस्तित्व सामूहिकता को लूटते हुए बाहरी लुटेरा राज कर रहे हैं। हमें अपनी अस्मिता और माटी के प्रति हमारी जुड़ाव की ताकत को पहचानना और बचाना जरूरी है।इसके लिए हमें एकता और आंदोलन की जरूरत है।परमानंद महतो समाज को गहरा चोट के साथ प्रश्न करते हुए '**कतिक सहब?**'कविता में लिखते हैं-

"देखा लुटतहयं
बन झाड़, टांइड़ टिकर
खान खनिज,घर दुआइर
सभे लुटतहयं।

पसल कुकुर खेपाए गेलयं
बहकी गेलएं,सहकी गेलएं
कतिक सहब?
नित पेटे नावां सुइ।
.....
.....
.....

हामरे झारखंडी, झारखंड हामरेक --
बन झाड़,टांइर टिकर
खेत गट,खान खनिज
--हामरेक।
लुटले --
कबउ नेखी सइह
एखनोनी सहब।"[4]

विस्थापन और शोषण का दर्द को चिंतन मनन करते हैं पंचपरगनिया कवि सारण प्रमाणिक अपनी कविता '**आदिवासी दरद**' में लिखते हैं-

" हामरेक पुरखा केर इ हेके माटी,
हामरेक रकत ले सींचि के बनाल पाटी।
बन-झाड़, नदी -नाला हामरेक संगे जिये,
आइज आपन हिया ले केउ छिने खजे।
हायरे मर आदिवासी दरद,
कुकुर बिलाई निहार डाराय के रहब?
जे माटी मेहेन हामरेक चिन्हा गाड़ल आहे,
से माटी के लूटे सउब के आड़ पाहे।
हरिहर बन-झाड़ सउब सिराय जातेहे,
पूंजिपति केर नजइर हामरेक पाहाड़े आहे।
खेती-बाड़ी छइड़ के कुली-बेगारी करे जाइ,
आपन घर दुआइर छइड़ के परदेस खाटे जाइ।
पढ़े लिखे केर सपना अधुरा रही जाय,

पेट केर आइगे हामरेक बचपन सिराय जाय।

हायरे मर आदिवासी दरद!

के सुनि इ पीड़ा, के बुझी इ दरद?

जागा डहर केर मानुस,जागा एबार संगे,

आपन हक ले लड़ब हामरे आदिम रंगे।

बिरसा-सिधु-कान्हु केर इ हेके डहर,

अइनाय केर खिलाफ उठाय हइ जहर।"[5]

आधुनिकीकरण के दौर में आदिवासी अपनी पहचान खोने के दर से भी पूरा जूझ रहे हैं। कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से अपनी मातृभाषा और लोक परंपराओं को जीवित रखने का आवाहन किया है ।समुदायिकता और सामूहिक नृत्य गान (आखड़ा)के जरिए समाज की एकता को दर्शाया गया है । पंचपरगनिया कवि बंशीधर महतो सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा करने का आवाहन करते हुए कविता के माध्यम से कहते हैं कि जहां स्त्री पुरुष अपने सुख दर्द झगड़ा को भूलाते हुए प्रेम प्रीति,सामूहिकता की डोर में बंधे रहते थे और दिवानिशी हंसी खुशी रहते थे वह आज कहां गया।जिससे हमें वापस लाने की जरूरत है ।इसकी रक्षा करना हमारी कर्तव्य है। इसी गहरी चोट के साथ कवि बंशीधर महतो अपनी कविता '**अखाड़ा**' में लिखते हुए कहते हैं-

"अह रे! साधेक गांवेक आखड़ा,

जाहां केकर नेखे बाखड़ा।

रसिक रसिका बनएं जाहां माकड़ा,

आखड़ा हेके पेरेम पिरितीक जिअंत सकड़ा।

अह रे! साधेक गांवेक आखड़ा।।

आखड़ाक ठांव गेले पारायला दुखड़ा,

पांता सारी नाचयं नर नारी छकड़ा।

आनंदे गदअ बिदअ बिसरलयं झागड़ा,

सलआना रीझे मन तन रहे तागड़ा।

अह रे!साधेक गांवेक आखड़ा।।

.....

.....

.....

आखड़ा देखी रग दुख चिंता हलक गुंड़ा,

बुढ़ा बुढ़ी रीझे लुचकयं,जेसन नाचे लाकड़ा।

छः राग छतिस रागिनी बरसे नी करे हेड़ा,
आठ काल बारोमास रउद सिसिर जाड़ा।
अह रे !साधेक गांवेक आखड़ा।।"[6]

आगे कवि डॉ पराग किशोर सिंह संस्कृति की रक्षा करने की आहवान करते हुए **'जागा'** कविता के माध्यम से कहते हैं कि अपनी संस्कृति को बचाना जरूरी है बाहरी सभ्यता की संस्कृति को अपनाना नहीं है ।इससे हमारे अस्मिता बना रहेगा। कविता की पंक्ति इस प्रकार है-

" जागा मानुस जागा,
निजेक संसकिरिति के बांचावा।
हते संसकिरितिक हइता,
ढुकते विदेसी सइभता।
जागा मानुस जागा,
निजेक संसकिरिति के बांचावा।
पचछिम सइभता घेंचाय लागाय,
निजेक सइभता बिसरता।
जेटा हामरेक गउरब हेके,
उके माटिए मिलाता।
जागा मानुस जागा
निजेक संसकिरिति के बांचावा।[7]

आदिवासी जीवन यथार्थ चित्रण केवल बाहरी समस्याओं तक सीमित नहीं है बल्कि समाज के आंतरिक बुराइयों पर भी प्रहार करता है।हड़िया(स्थानीय पेय) के अत्यधिक सेवन और डायन प्रथा जैसी कुरीतियों के खिलाफ भी कई कवियों ने अपने कलम चलाई है ।शिक्षा की कमी के कारण होने वाले शोषण को भी कविताओं का विषय बनाया गया है। नशा के कारण होने वाले गलतियों को पंचपरगनिया कवि सहोदर खंडित अपनी कविता **'महुआ रस'** में दिखाने का प्रयास किया है कविता की पंक्ति इस प्रकार है-

" कुल माइन,धन धरम सउब गुचायला,
जे रजे महुआ केर रस पिएला।
रिझ आमद, नींद भूख कामासकति बाढ़ेला,
लाज डर दुख चिंता आर थकान धुर करेला,

नबे बछरेक बुढ़ा निजके जुवान मने करेला
रिझे रंगे मगन हएके सुन्दरी संगे नाचेला
एसन काथा अहे बाबु राज कहेला
जे रजे महुआ केर रस पिएला।
.....
.....
जाएगा जमी,घर दुआइर,मदेक तेहें बेचेला,
थारी लोटा,बाटी गिलास,गहना बांधा करेला,
खुखड़ी छागेइर,गाइ गरू ससता दामेइ धासेला,
मातल समइए रागे हले हांड़ी तेलाइ भांगेला,
माएं बाप आर दसर संगे लड़ेला,
जे रजे महुआ केर रस पिएला।[8]

निष्कर्ष: इस प्रकार से कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि पंचपरगनिया कविताओं में आदिवासी जीवन का यथार्थ चित्रण किया गया है। आदिवासी जीवन का यथार्थ एक तरफ उनकी गौरवशाली परंपरा और प्रकृति प्रेम को दर्शाता है, तो दूसरी तरफ आधुनिक दुनिया द्वारा किए जा रहे उनके शोषण और उपेक्षा की कहानी कहता है।

संदर्भ सूची:-

१. गंगा सहाय मीणा: आदिवासी चिंतन की भूमिका,अनन्य प्रकाशन दिल्ली२०१७, पृष्ठ संख्या -१३
२. विशाल शर्मा ,दत्ता कल्हारे :आदिवासी साहित्य एवं संस्कृति ,स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली -२०१५ ,पृष्ठ संख्या -२१
३. परमानंद महतो: जीवन पथेक फूल ,जनजातीय भाषा अकादमी बिहार सरकार,रांची -१९९० ,पृष्ठ संख्या -०१
४. वहीं, पृष्ठ संख्या -८
५.सं.पंकज कुमार दास,जोहार दर्पण पाक्षिक ई पत्रिका२०१५,अंक -३८
६.बंशीधर महतो:मधु सत, झारखंड झरोखा-२०१५, पृष्ठ संख्या-१६-१८
७. डॉ पराग किशोर सिंह: जागरन (पंचपरगनिया काइब संगरह)झारखंड झरोखा -२०१५ ,पृ.सं.- २३
८. परमानंद महतो: जीवन पथेक फूल,जनजातीय भाषा अकादमी बिहार सरकार,रांची-१९९०,पृष्ठ संख्या-११९-१२०